ISSN (Online): 2350-0530
ISSN (Print): 2394-3629

International Journal of Research -GRANTHAALAYAH
March 2021, Vol 9(3), 353 – 359
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v9.i3.2021.3817

COLOUR TRADITION & CHALCOLITHIC POTTERY

ताम्राश्मीय पात्र एवं रंग परंपरा

Dr Anjali Pandey *1

*1 HOD Drawing and Painting, Government Maharani Laxmibai Girls P.G. College Bhopal, India

DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v9.i3.2021.3817

Article Type: Research Article

Article Citation: Dr Anjali Pandey. (2021). COLOUR TRADITION & CHALCOLITHIC POTTERY. International Journal of Research -GRANTHAALAYAH, 9(3), 353-359. https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v9.i3.2021.3817

Received Date: 16 March 2021

Accepted Date: 31 March 2021

ABSTRACT

English: The excavation work done in India gives information about the stages of ancient Indian culture and various cultural region and their important characteristics. The materials and pottery found from the excavation of chalcolithic sites in Madhya Pradesh are the direct evidences of tradition of pottery paintings. In Madhya Pradesh the cultural range from the Chalcolithic (Tamrashmiya) period to the early medieval period can be traced to the sites of Kayatha, Ujjain, Nagda, Vidisha, Maheshwar-Nawadatoli, Arawa, etc..The erstwhile pottery here provides a perfect example of the amalgamation of different cultures. The Malwa region of Madhya Pradesh has its own style of personal character tradition, this tradition has been more advanced and elaborate than other eligible traditions.

Hindi: भारत में किए गए उत्खनन कार्य प्राचीन भारतीय संस्कृति और विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्र के चरणों और उनकी महत्वपूर्ण विशेषताओं के बारे में जानकारी देते हैं। मध्यप्रदेश में चॉकोलिथिक स्थलों की खुदाई से मिली सामग्री और मिट्टी के बर्तन मिट्टी के बर्तनों की परंपरा के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मध्य प्रदेश में चोलकोलिथिक (ताम्रश्मिया) काल से लेकर प्रारंभिक मध्यकाल तक की सांस्कृतिक श्रृंखला का पता लगाया जा सकता है कि कायथा, उज्जैन, नागदा, विदिशा, महेश्वर-नवादातोली, अरवा, इत्यादि के स्थल। यहां पूर्ववर्ती मिट्टी के बर्तन एक आदर्श उदाहरण प्रदान करते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के समामेलन का। मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र की व्यक्तिगत चरित्र परंपरा की अपनी शैली है, यह परंपरा अन्य योग्य परंपराओं की तुलना में अधिक उन्नत और विस्तृत रही है।

Keywords: Copperware; Archaeological Excavation; Graphing Herminjee; Magnesium (Mg); Hematite; Lime; White Chalk; Geru; Inverted Firing; Chemical Process.

1. प्रस्तावना

भूतकाल का अध्ययन केवल वर्तमान के माध्यम से ही किया जा सकता है । बीते हुए समय के अध्ययन के लिए वर्तमान वस्तुओं तथा वर्तमान में विद्यमान संस्करणों को भूतकाल के अवशेषों के रूप में लेकर उनसे भूतकाल की घटनाओं के बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है। वे तर्क जिनके आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे वर्तमान वस्तुओं घटनाओं तथा संबंधों के अवलोकन पर आधारित होते हैं।[1]

© 2021 The Author(s). This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

मानव के उद्गम और प्रकृति के रहस्यों का ज्ञान हमें उसके द्वारा उपयुक्त सामग्री के अवशेषों एवं क्रियात्मक गतिविधियों से प्राप्त होता है।[2] उत्खनन से प्राप्त पुरा सामग्री के अध्ययन से हमें उस काल के समाज उनकी प्रथाएं तथा उनके रीति.रिवाजों आदि के विषय में जानकारी प्राप्त होती है ।[3] साथ ही साथ

मानव के विकास की कहानी इन से संबंधित विभिन्न पुराकथाएं प्रत्येक मानव समाज में प्रचलित है। प्रत्येक समाज में इस प्रकार के ज्ञान का हस्तांतरण पुराकथाओं के माध्यम से मौखिक आधार पर होता चला आया है।[4] कालांतर में मौखिक परंपरा के हस्तांतरण से अतीत के ज्ञान के स्वरूप भी परिवर्तित होते चले गए और उनमें कुछ विकृतियां भी समाहित हो गई इसलिए यह पुराकथाएं आज हमें काल्पनिक और अविश्वसनीय लगती हैं। ज्ञान के विकास के साथ.साथ मानव ने अतीत के पहलुओं को खोजने तथा उन्हें उजागर करने के लिए विभिन्न साक्ष्य खोजने प्रारंभ किए और उपयुक्त साक्ष्यों से तथ्य प्रमाणित किए जाने लगे।

इतिहास तथा पुरातत्व में गहरा संबंध है। इतिहासकारों को भी अतीत संबंधी ज्ञान के तथ्यात्मक संकलन के लिए विभिन्न पुरातात्विक साक्ष्यों का उपयोग करना पड़ता है। किसी काल से संबंधित सांस्कृतिक निरंतरता को समझने के लिए पुरा सामग्रियों का विशेष महत्व है।

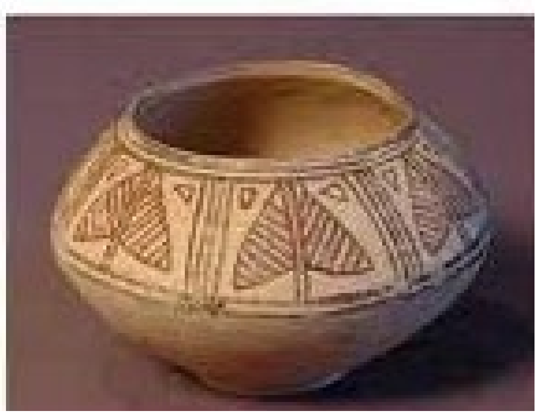

ताम्राश्मीय पात्र एवं रंग परंपरा

गृह किसी समाज की सबसे छोटी इकाई है। ये मात्र निवास व्यवस्था के परिचायक ही नहीं हैं वरनए यहां से प्राप्त अवशेषए यहां निवासरत मानव की जीवन पद्धति को समझाने में भी सहायक है।[5] पुरातात्विक सामग्री का प्रमुख स्त्रोत मानव की सृजनात्मकता और कलात्मक अभिव्यक्ति है। मानव ने अपने जीविका उपार्जन के लिए अपनी सुरक्षा तथा उपयोगिता के लिए विभिन्न उपकरणों एवं साधनों का सृजन किया। धातुओं से विभिन्न उपकरणों का निर्माण किया जो आज की पुरातात्विक सामग्री का प्रमुख संकलन है। इसके आधार पर मानव की सभ्यता के विकास और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को प्रसार होने की जानकारी मिलती है। आदिमानव की कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में इन्हीं उपकरणों से कलात्मक रचनाएं की गई जो उस काल के मानव के ज्ञान चिंतन और अभिव्यक्तिए सृजनशीलता के प्रमुख प्रमाण है।

बाल्यावस्था से ही गीली मिट्टी से विभिन्न वस्तुओं का निर्माण और उनसे खेलने का प्रयोग मानव करता रहा है। इसी मिट्टी से अपनी उपयोगिता की वस्तुओं का निर्माण भी मानव ने प्रारंभ किया होगा तभी से मृदभांड का निर्माण और उनका दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए उपयोग प्रारंभ हुआ होगा शनैरू.शनैरू मृदभांडों का प्रयोग बढ़ता गया और प्रत्येक समाज में इनका निर्माण और प्रयोग प्रचलित होता गया । यह मानव की संपत्ति का एक भाग बना और मानव ने इसे भी अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मानव निर्मित मृदभांडों के द्वारा मानवीय अभिव्यक्ति का उपयोगितावादी स्वरूप हमारे सामने आता है। इतिहासकार मृदभांड को काल विशेष और समाज विशेष के द्वारा प्रस्तुत महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में प्रयोग करते हैं। मृदभांडों का निर्माण और उनका प्रयोगए विश्व के सभी समाजों में आदिकाल से होता आया है।

मृदभांड निर्माण की प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। प्रथम मिट्टी का प्रकार उसकी रचना और प्रयोग के लिए उसको तैयार करना। दूसरा पक्ष है मानव समाज द्वारा विकसित मृदभांड निर्माण की प्रक्रिया।

मानव ने इस संपूर्ण निर्माण का विकास अनादिकाल से संचित अनुभव के द्वारा किया और उसमें निरंतर संशोधन व परिमार्जन किया। यह संपूर्ण प्रक्रिया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रही है। यही कारण है कि मानव समूह में मृदभांड बनाने की संपूर्ण प्रक्रिया में मृदभांडों को स्वरूप और आकार प्रदान करने तथा उनके ऊपर कलात्मक अभिव्यक्ति में पर्याप्त समानता होती है। यह सारे गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते हैं। मृदभांड की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर इतिहासकार और पुरातत्वविद सभ्यताओं के क्रमबद्ध विकास की व्याख्या करते हैं। मानव इन्हीं सभी गुणों को सीखकर अपनाता है और उसमें अपने अनुभवों से परिमार्जन भी करता है। इसी प्रक्रिया के प्रभाव से मृदभांड बनाने की कला भी एक समूह से दूसरे में हस्तांतरित हुई या फिर समूह के कुछ लोग मूल समूह से अलग होकर दूसरे स्थान पर चले गए तो यह कला भी दूसरे स्थान को स्थानांतरित होती चली गई। मानव समूहों के स्थान परिवर्तन तथा कला के हस्तांतरण का अध्ययन विभिन्न मानव समूहों के मध्य सांस्कृतिक आदान.प्रदान एवं संपर्क के अध्ययन का प्रमुख स्रोत है।

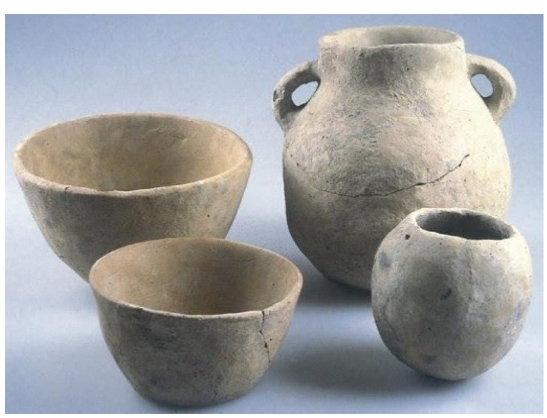

मृदभांड उनकी रंग योजना एवं प्रयुक्त सामग्रीरू

विभिन्न स्थलों से प्राप्त मृदभांडों की रंग योजना में पर्याप्त भिन्नता तथा विविधता पाई जाती है। क्षेत्र विशेष की मिट्टी की संरचना और उसमें विद्यमान विभिन्न रासायनिक एवं खनिज तत्वों की मात्रा मिट्टी के रंग को प्रभावित करती है। प्रत्येक क्षेत्र में खनिज तत्वों जैसे चूनाए गेरूए अभ्रकए बालू का प्रतिशत भिन्न होता है। यही तत्व इस क्षेत्र की मिट्टी के रंग रूप को सुनिश्चित करते हैं। मिट्टी का यही स्वरूप क्षेत्र विशेष के मृदभांड को एक विशेष रंग प्रदान करता हैए जो उस क्षेत्र के पात्रों की पहचान बन जाता है।

आदिकाल से ही मानव प्रकृति प्रदत्त पदार्थों के प्रयोग से रंगों का निर्माण करता रहा है ।[6] मृदभांडों के रंग संयोजन में वनस्पतियों एवं मिट्टी में पाए जाने वाले विभिन्न तत्वों का प्रयोग भी रंग बनाने के लिए किया जाता रहा है। मृद पात्रों में चित्रण के लिए अधिकांशतः काले रंगए सफेद एवं गेरुए रंग का प्रयोग किया जाता था। सफेद खड़िया अथवा चूने का उपयोग सफेद रंग के लिए तथा गेरुआ रंग के लिए गेरू का प्रयोग प्रचलित था।[7] काले रंग के पात्रों पर सफेद रंग एवं गेरुआ रंग से चित्रकारी एवं गेरुए रंग के पात्रों पर सफेद व काले रंग से चित्रांकन किया जाता था। अधिकांश समाजों में लाल रंग के लिए गेरू अथवा हरमिंजी मिट्टी का प्रयोग किया जाता रहा हैए कायथा उत्खनन में रक्त वर्ण की कुछ गाठें प्राप्त हुई थी जिनसे लाल रंग बनाकर उन्हें कायथा पात्रों पर हल्के लाल रंग के चित्रण के लिए प्रयोग किया जाता था।[8]

पुरातत्वविदों तथा पुरा. विशेषज्ञों द्वारा अपने शोध वृतांत में आदिकालीन मानव द्वारा चित्रांकन हेतु प्राकृतिक पदार्थों के उपयोग का वर्णन किया गया है। जिस से ज्ञात होता है उस काल के मानव को इन पदार्थों की पूर्ण जानकारी थी। लाल रंग को स्थानीय रूप से उपलब्ध गैरिक (Ferric-Oxide) से बनाया जाता था, जो लोहे (Fe2O3) के आंशिक विघटन से वहां बहुतायत में उपलब्ध है। जहां लैटेराइट मौसम के प्रभाव के लिए धरती की सतह पर खुला होता है वही मौसम के प्रभाव से मैग्नेटाइट (Fe3O4) तलछट हेमेटाइट में

परिवर्तित हो जाता है। हेमेटाइट का लाल रंग मौसम के शुष्क होने की स्थिति में उसके नमक के जल के शुष्क (Fe2O3-H2O) होने से बनता है। बैगनी रंग मैग्नीशियम (Mg) से बनता है जो ज्वालामुखी से निकली चट्टानों के अवशेष के रूप में उपलब्ध है। मोव रंग (MgO2) मैग्निशियम ऑक्साइड से बनता था। सफेद रंग चूने के पत्थर Calcium Carbone Kaolene (CaCo3) अथवा मैग्नीशियम कार्बोनेट (MgCo3)अथवा मैग्नी साइट (MgSo4) से बनता है। हरा रंग ग्लूकोनाइट अथवा कॉपर कंपाउड मैलेचाइट (Copper Compound Malachite) (Cuco3.CuOH2) चाल्सडोनी पर मौसम के प्रभाव से बनता है यह चाल्सडोनी विंध्य के दक्कन ट्रैप में बहुतायत से पाया जाता है।[9] काले रंग को बनाने के लिए वनोपज का प्रयोग बहुतायत से होता रहा है जो आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित है। वनों में बहुतायत से मिलने वाले फल हरण को लोहे के साथ संयोजन करके उत्तम काला रंग बनाया जाता है।[10] रंगों की जानकारी के साथ.साथ इन रंगों को उपयोग करने हेतु बनानेए बारीक पीसनें और उनका पेस्ट बनाने की विधियों की भी जानकारी उस काल के मानव को थी।

पात्रों पर चित्रण के लिए ताम्रयुगीन पात्र कलाकारों ने तूलिका निर्माण में पशुओं के पूंछ के बाल अथवा बांस के समान रेशेदार वनस्पति का प्रयोग किया है।[11]

पात्रों पर रेखांकन करते समय कई समानांतर रेखाओं एवं पट्टिकाओं को एक साथ डुबोकर पात्र की सतह पर रखकर चाक को धीमी गति से घुमा दिया जाता थाए जिससे कई समानांतर रेखाएं एक साथ अंकित हो जाती थी।[12] पात्रों पर विभिन्न प्रकार के रेखांकन हेतु आवश्यकता अनुसार मोटी अथवा बारीक तूलिकाओं का प्रयोग किया जाता था कहीं.कहीं निब के समान कलम से भी रेखांकन किया गया है।

मृदभांड ऊपर चित्रांकन के लिए कई रंगों का प्रयोग किया जाता रहा है। रंगो के लिए उपरोक्त वर्णित प्राकृतिक प्रदत्त सभी पदार्थों के प्रयोग का प्रचलन मृदभांडों के लिए किया जाता था या नहीं इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं है परंतु विभिन्न रंग की मिट्टी जो स्थानीय रूप से उपलब्ध होती है उसका प्रयोग अवश्य होता रहा है और आज भी उसका प्रयोग जनजीवन में सामान्यतः होता है। मृदभांड की रंग योजना के लिए दो प्रकार की प्रक्रिया का प्रचलन रहा है। प्रथम मिट्टी के रंगों के प्रयोग द्वाराए दूसरा पकाने की विशिष्ट विधि द्वारा।

मिट्टी के रंग में गैरिक रंग का अधिकांशतः प्रयोग किया गया है जो सर्वदा सर्वमान्य एवं प्रचलित है। मिट्टी के बर्तनों के पकाने की प्रक्रिया में अधिकतर क्षेत्र की मिट्टी का रंग स्वतः गैरिक हो जाता है। इन मृदभांडों को बनाने तथा सुखाने के बाद उनकी ऊपरी सतह

पर गेरू अथवा हरमिंजी मिट्टी से बना लाल गेरुए रंग का आलेप भी किया गया है ।[13] सफेद रंग के लिए चूना एवं खड़िया का प्रयोग किया जाता है। लाल रंग के मृदभांड के ऊपर सफेद रंग के चित्रांकन की तत्कालीन परंपरा सामान्यतः आज भी प्रचलित हैं। मालवा क्षेत्र के विभिन्न पुरा.स्थलों से प्राप्त काले मृदभांड के ऊपर सफेद रंग का चित्रांकन राजस्थान के आहाड संस्कृति की अपनी विशिष्टता है। कुछ घड़ों एवं जार इत्यादि पात्रों पर पीली मिट्टी का प्रयोग आलेप चढ़ाने के लिए किया गया है।[14] इनके प्रयोग का प्रमाण मोहनजोदड़ो से प्राप्त ठीकरों से प्रमाणित होता है। मृदभांड के ऊपर चित्रण के लिए अन्य प्रचलित रंग काला है जो दो भिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा प्रयुक्त हुआ है। मध्य प्रदेश के बेस नगर के उत्खनन से जहां काली लेपित पात्र प्राप्त हुए हैं वही आवरा काल खंड 1 के उत्खनन में प्राप्त लाल पात्रों पर काले रंग से चित्रण किया गया है। पात्रों पर काले रंग लेप अथवा चित्रण के लिए वनस्पतियों से अथवा लकड़ी के कोयले से बने काले रंग का प्रयोग किया जाता रहा है। हरण के लोहे के साथ संयोजन से काले रंग बनाने की रासायनिक प्रक्रिया का ज्ञान संभवतः ताम्र युगीन मृदभांड बनाने वालों को नहीं रहा होगा। उपरोक्त प्राथमिक रंगों के अतिरिक्त धूसरए कत्थईए गुलाबीए बैंगनीए केसरिया अन्य मिश्रित रंगों का प्रयोग भी मृदभांड के ऊपर किया गया है जो संभवतः मुख्य रंगों के मिश्रण अथवा एक के ऊपर दूसरे रंग लेप से स्वतः बन गए होंगे किंतु कालांतर में यह मिश्रित रंग भी प्रचलित हो गए।[15]मृदभांडों के पकाने की प्रक्रिया उन्हें मजबूती प्रदान करने के साथ.साथ रंग को भी परिवर्तित करती है। खुली भट्टियों में पकाने की प्रक्रिया का प्रयोग रंग परिवर्तन के लिए भी किया जाता था। आहाड़ के पात्र में काला तथा लाल रंग जो अपनी विशिष्टता रखता हैए उसे उल्टी तपाई ष्पदअमतजमक पितपदहष् द्वारा विशिष्ट पद्धति से पकाया जाता है। स्कंद तक के ऊपरी भाग काला तथा नीचे का भागए लाल रंग का होता है। पात्र के अंदर का भाग पूर्णतया काला होता है। पकने के बाद ऐसे पात्र दो रंग के बन जाते हैं। जिस भाग में हवा जा सकती थीए वह लाल रंग का तथा जो भाग ढका हुआ रहता है वह धुएं के कारण काला हो जाता था ।[16] भट्टी के तापमान को कम ज्यादा करके पात्रों के रंग को भी हल्का तथा चमकदार किया जाता था। पात्र निर्माण की यह प्रक्रिया अत्यंत जटिल है इस संपूर्ण निर्माण प्रक्रिया में मानव ने अपने संचित अनुभवों के द्वारा निरंतर संशोधन तथा परिमार्जन किया है।[17]

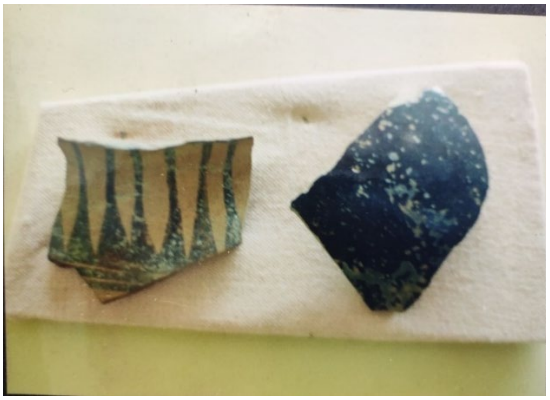

विश्व के कई देशों में पात्र चित्रण कला स्वतंत्र रूप में विकसित हुई है एवं इस क्षेत्र में निरंतर तकनीक शैली माध्यम को लेकर नवीन प्रयोग होते रहे हैं भारत में पात्रों पर चित्रांकन एवं रंग परंपरा का विविधता पूर्ण दीर्घकालीन इतिहास यहां की कला तथा संस्कृति का क्रमबद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं जो पुरा मानव के द्वारा विकसित की गई तकनीकी जानकारियों तथा ज्ञान को जन सामान्य के समक्ष उपलब्ध कराने में सहायक है ऐसे चित्रण सुंदर और विशिष्ट है तथा अपने आप कलात्मक एवं ऐतिहासिक महत्व रखते हैं अतः इन के निरंतर संरक्षण तथा नवीन पुरातात्विक शोध कार्य करने की आवश्यकता है।

SOURCES OF FUNDING

None.

CONFLICT OF INTEREST

None.

ACKNOWLEDGMENT

None.

REFERENCES

[1] Spaulding AC, 1968: Explanation in Archaeology a new perspective in Archaeology; S. Vin Ford and L. Vin Ford eldiv, Chicago page- 37.
[2] Bhattacharya DK, 1990: Prehistoric archaeology - A comparative study of human succession, Hindustan publishing Corporation, India, Jawahar Nagar Delhi-7 page- Introduction.
[3] Pandey RP, 1989: Bhartiya Puratatv, Madhya Pradesh Hindi Granth Academy Bhopal, page 6-13.
[4] Kaushambi Damodar Dharmanand, 1992: Prachin Bharat ki Sanskriti aur aur Sabhyata, Rajkamal Prakashan, Nai Delhi, page- 24-25, 96.
[5] Pandey RP, 1989: Ibid, page- 10 &
[6] Kamboj BP, 1988: Prachin Europeeya Kala, Ratan Prakashan Mandir, Agra page- 8.
[7] Datta Veena, 2000: Chalcolithic Pottery Paintings- with special reference to Central India and Deccan, Sharda Publishing House, Delhi, page- 234.
[8] Dhawlikar SK, 1970: Kayatha- a new Chalcolithic Culture, Indica, volume-7 page- 72.
[9] Bhaumik Atul Chandra, 1996: Prehistoric Art in India, a visual expression, Sharma RK and Tripathi: Recent Perspective of Prehistoric Art in India and allied subject New Delhi page- 59- 60.
[10] Brown Percy 1982: Indian Paintings Association Press Kolkata page 112
[11] Datta Veena, 2000: ibid, page 232
[12] Ibid page-232-233
[13] Ibid page-234
[14] Ibid page 230-234
[15] Pandey Anjali 2003 Madhya Pradesh Mein Tamra Pashan Yugeen Mridbhand Chitrakala, - unpublished research work,
[16] Bhattacharya DK, 1990: Ibid, page-129
[17] Khare MD, 1970: Pottery and Terracotta in Ancient Madhya Pradesh journal of MP Itihaas Parishad,number-8, page-56